प्राक्कथन

मनुष्य भावमय एवं चिंतनशील प्राणी है, भावों की अभिव्यक्ति नाद के द्वारा होती है, इस बात का अनुभव उसे अपने कंठ से निसृत: नाद तथा चातुर्दिक फैले प्राकृतिक वातावरण में समय-समय पर उत्पन्न होने वाले नाद से हुआ। एक नाद का दूसरे नाद से क्या संबंध है, तथा नाद में ऊंचा-नीचापन भी होता है, इस तरह का ध्वनि पार्थक्य बोध उसे प्राकृतिक वातावरण से प्राप्त हुआ होगा। जहाँ इन विभिन्न नादों के आधार पर गान का विकास हुआ, वहीं उस गान के साथ वाद्यों का साहचर्य स्थापित हुआ। वाद्यों का कार्य जहां गान के प्रभाव को बढ़ाना, गायक को सूझ के लिए अवसर देना था, वहीं वाद्यों का प्रयोजन काल परिमाण भी था। इस प्रकार कई प्रकार के वाद्य आविष्कृत हुए। वाद्यों में तत, सुषिर तथा घन के साथ-साथ अवनद्ध वाद्य भी व्यवहार में आये। इन वाद्यों का प्रयोजन उत्सव, गान, राजाओं के मंगलकार्य, कल्याण योग, विवाह, कर्म, उत्पात, पुत्र जन्म आदि कार्यों के अवसर थे। यूँ तो सभी प्रकार के वाद्यों का मानव जीवन में अपना स्थान है, लेकिन अवनद्ध वाद्य अपनी विशेष भूमिका के कारण विशिष्ट स्थान को प्राप्त हुआ। कालान्तर में अवनद्ध वाद्यों के बिना गान की कल्पना कालातीत हो गयी। शास्त्रों में तो यह भी कहा गया है कि ''मनोगा हस्तगा चास्य द्विविधा गान कल्पना।''

अवनद्ध वाद्य चमड़े से मढ़े व बँधे होते हैं, इसलिए इन्हें अवनद्ध वाद्य कहा जाता है । काल से संबंध होने के कारण ताल--वाद्य भी कहलाते हैं। स्वाति ऋषि को अवनद्ध वाद्य की मूल प्रेरणा पुष्कर (तालाब)में फैले हुए कमल के पत्तों पर जल बिन्दुओं के आघात से उत्पन्न ध्वनियों से मिली थी, इसलिए अवनद्ध वाद्य 'पुष्कर

वाद्य' भी कहलाते हैं। अवनद्ध वाद्यों के लिए एक अन्य संज्ञा 'वित' भी प्राप्त होती है। अवनद्ध वाद्य का वादन मढ़े हुए खाल पर हाथ या डंडी के प्रहार करके ध्वनि उत्पन्न किया जाता है । वैदिक काल में दुंदुभि, दुर्दर, गर्गर, पटह, हुडुक्का इत्यादि, मध्यकाल में मृदंग, पखावज, दमामा, नगाड़ा, ढप, नक्कारा इत्यादि तथा वर्तमान में पखावज, मृदंग, मृदंगम्, तबला, ढोलक, नगाड़ा, नक्कारा, ताशा, नाल इत्यादि वाद्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्हीं के आंकिक, उर्ध्वक, आलिंग्यक आदि भेद शास्त्र-ग्रन्थों में वर्णित हैं।

अवनद्ध वाद्यों का वादन प्रारंभिक अवस्था में सहज एवं स्वाभाविक रहा होगा, कालांन्तर में वादन के अनेक सिद्धांत स्थापित हुए, जिनका उल्लेख तत्कालिक शास्त्र-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। विकास क्रम में अवनद्ध वाद्यों ने गान साहचर्य के अतिरिक्त अपना स्वतंत्र स्थान बनाया, परिणामत: वाद्यों का सामूहिक वादन एवं स्वतंत्र वादन भी प्रचार में आया, तथा एतत्विषयक सिद्धांतों का प्रणयन भी हुआ। इस प्रकार शास्त्र-ग्रन्थों में अवनद्ध वाद्य, उसकी निर्माण विधि, उनकी वादन सामग्री, उनका प्रयोग एवं उनके वादकों के गुण-दोष आदि दृष्टियों से विचार समय-समय पर होता रहा है। संगीत शास्त्र-ग्रन्थों में जहाँ संगीत संबंधी सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, वहाँ स्वतंत्र रूप से वाद्याध्याय आदि के रूप में वाद्यों के सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक प्रचलित अवनद्ध वाद्य तबला, तबले के घराने, तबले के बोल, तबले पर बजाने वाले तालों और उनका स्वतंत्र अध्ययन आदि विषयों पर तो शोध-कार्य हुआ है, लेकिन अवनद्ध वाद्यों पर ऐसा कोई शोध-कार्य नहीं हुआ जो उनके सिद्धांत और उनकी परम्परा को सम्यक रूप से प्रस्तुत कर सके। इसी आवश्यकता को दृष्टिपथ में

रखते हुए हमने इस क्षेत्र में कार्य करने का विचार किया। तबला-वादन में हमारी रुचि बाल्यकाल से ही रही है। तबले के सिद्धान्तों को हमने विभिन्न गुरुओं एवं पं० बद्री महाराज, श्री सुरेन्द्र भट्ट विशेषकर पं० छोटे लाल मिश्र जी से साक्षात् ग्रहण किया है तथा संगीत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में तबला-संगतिकार के पद पर कार्य करने के साथ-साथ आकाशवाणी एवं विभिन्न संगीत आयोजनों में मंच प्रदर्शन करता रहा हूं। इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, मध्य प्रदेश से तबले में एम०ए० की परीक्षा देते समय संगीत के शास्त्रीय पक्ष तथा अवनद्ध वाद्यों के विषय में नाट्यशास्त्र तथा संगीत रत्नाकर आदि का जब हमें अध्ययन अपने (तबला) पाठ्यक्रम के अंतर्गत् करना था तो डा० पंकजमाला शर्मा जी के सहयोग से इन ग्रन्थों में अध्ययन की जिज्ञासा बढ़ी। हमने उसी समय संकल्प किया कि इस विषय पर स्नातकोत्तर परीक्षा के पश्चात् भी अध्ययन करेंगे। अपनी जिज्ञासा को हमने डा० पंकजमाला शर्मा जी से निवेदित किया। उन्होंने इस विषय में मेरी रुचि की सराहना की तथा अपने निर्देशन में कार्य करने की अनुमति प्रदान की, परिणामत: पी-एच०डी० की उपाधि हेतु हमने "अवनद्ध वाद्यों के शास्त्रीय सिद्धान्त एवं उनकी वादन परम्परा का विश्लेषणात्मक अध्ययन" इस विषय का चयन किया। अवनद्ध वाद्य क्या हैं? इसके स्वरूप, लक्षण, महत्त्व क्या हैं? इसके निर्माण में संरचना, आकृति, पदार्थ एवं निर्माण विधि क्या है? वैदिक युग से आधुनिक युग तक के अवनद्ध वाद्य कौन-कौन हैं? संगति तथा एकल वादन के सिद्धांत क्या हैं? अवनद्ध वाद्य वादक के गुण-दोष क्या हैं? एवं अवनद्ध वाद्यों की रस-निष्पत्ति में क्या भूमिका है? इत्यादि पहलू इस शोध-प्रबंध की अंतर्वस्तु है ।

इस शोध -प्रबंध को अध्ययन की सुविधा हेतु सात अध्यायों में वर्गीकृत

किया है ।

प्रथम अध्याय में अवनद्ध वाद्यों का स्वरूप, लक्षण, अभिप्राय, वाचक शब्द, उत्पत्ति तथा महत्त्व का वर्णित करने का प्रयास किया है ।

द्वितीय अध्याय में अवनद्ध वाद्यों के प्रकारों के अंतर्गत् आंकिक, उर्ध्वक, आलिंग्यक एवं अन्य प्रकारों का वर्णन किया है ।

तृतीय अध्याय में अवनद्ध वाद्यों के निर्माण सिद्धांत एवं निर्माण विधि के अंतर्गत् उनकी संरचना, आकृति, निर्माण पदार्थ एवं निर्माण विधि को विस्तारपूर्वक विवेचना करने का प्रयास किया है ।

चतुर्थ अध्याय में वैदिक युग से वर्तमान तक के अवनद्ध वाद्यों के परम्परा को बतानेका प्रयास किया है।

पंचम अध्याय में वैदिक शास्त्र-ग्रन्थों में, प्राचीन शास्त्र-ग्रन्थों में एवं मध्ययुगीन शास्त्र-ग्रन्थों में अवनद्ध वाद्य-वादन सिद्धान्त को वर्णित करने का प्रयास किया है।

षष्ठ अध्याय में उत्तर एवं दक्षिण भारतीय संगीत में संगति एवं स्वतंत्र या एकल वादन को वर्तमान संगीत में प्रचलित अवनद्ध वाद्य-वादन सिद्धांत के अन्तर्गत विवेचन किया गया है ।

सप्तम अध्याय में अवनद्ध वाद्य-वादक के गुण-दोष एवं अवनद्ध वाद्यों की रस निष्पत्ति में भूमिका का वर्णन करने का प्रयास किया है ।

उपसंहार के रूप में अपने शोध से प्राप्त निष्कर्षों को संग्रहित किया है।

तत्पश्चात् संदर्भ ग्रन्थ सूची संलग्न है । अन्त में विभिन्न साक्षात्कार एवं कुछ गायकों, वादकों के ध्वनि यन्त्रस्थ गायन, वादन आदि के अंशों का प्रमाण स्वरूप

ऑडियो कैसेट के रूप में संलग्न किया है ।

इस शोध-प्रबन्ध के लिए मैं अपनी निर्देशिका डा० पंकजमाला शर्मा जी का हृदय से आभारी हूं, जिनके सुयोग्य और श्रेष्ठ निर्देशन में मेरे इस शोध-कार्य की संपूर्ति संभव हुई। यह उन्हीं की प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं असीम स्नेह का प्रतिफलन है जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरी कठिनाइयों का समाधान कर मेरा मार्गदर्शन किया। जो मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा। मैं अपने पूज्य गुरु पं० छोटे लाल मिश्र जी का अत्यन्त आभारी हूं जिन्होंने मुझे गुरु-शिष्य परम्परा से तबले को क्रियात्मक रूप से शिक्षण प्रदान ही नहीं किया अपितु शोध-कार्य काल में शोध संबंधी सैद्धांतिक पक्ष में भी समस्याओं का समाधान किया।

मैं पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालयों के अधिकारियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध कराने में मेरा सहयोग किया। पंजाब विशविद्यालय के संगीत विभाग के शिक्षकों तथा सभी अधिकारियों के प्रति उनके सहयोग के लिए कृतज्ञ हूं।

मैं अपने स्वर्गीय पिता श्री छेदी लाल शर्मा के प्रति श्रद्धापूर्वक नतमस्तक हूं, जिनकी प्रेरणा से इस कार्य में प्रवित्त हुआ। मैं अपनी पत्नि श्रीमती सीमा शर्मा का आभार व्यक्त करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूं कि जिन्होंने पारिवारिक ज़िम्मेवारियों से मुझे मुक्त रखा और सदैव सहयोग प्रदान किया। मैं अपने परिवार जनों, परिजनों के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस कार्य को पूर्ण करने में मेरी सहायता की ।

महेन्द्र प्रसाद शर्मा

महेन्द्र प्रसाद शर्मा

भूमिका

संगीत में **वाद्यों** का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाद्य की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि गायन की । जिस प्रकार गायन के प्रादुर्भाव का कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार वाद्यों के प्रादुर्भाव का भी कोई ठोस आधार हमें उपलब्ध नहीं होता। यह भी सत्य है कि वाद्यों की परम्परा सुदीर्घ काल से चली आ रही है। कभी साहचर्य के रूप में कभी स्वतंत्र-वादन के रूप में वाद्यों का वादन होता रहा है। यही नहीं, कालान्तर में वाद्यों के वर्ग भी बन गये। कुछ वाद्य स्वर वाद्य कहलाए तो कुछ काल-मापक या लय वाद्य कहलाये। काल-मापक वाद्य पहले 'घन' वाद्य के रूप में व्यवहार में थे, कालांतर में अवनद्ध वाद्यों के रूप में पहचान में आये। इस तरह अवनद्ध वाद्यों का स्वतंत्र वादन तो होता ही था, गान के साथ संगति वाद्यों के रूप में भी प्रयोग होने लगा। अवनद्ध वाद्यों पर बजने वाले बोल काष्ट की छड़ी अथवा हाथ से बजाये जाते थे। विभिन्न पाटाक्षरों का निर्माण, विभिन्न पाटाक्षरों का वादन तथा उन पाटाक्षरों के मेल से अन्य बोलों का निर्मार्ण भी हुआ। छन्दों के आधार पर विभिन्न तालें गति तथा लय भी व्यवहार में आये। समय-समय पर संगीत मर्मज्ञ आचार्यों ने व्यवहार में आने वाली इन प्रक्रिया को सिद्धान्तबद्ध किया। कला नित्य, नवीन और परिवर्तनशील होती है उसमें निरन्तर सृजन व परिवर्तन होता रहता है । परिणामतः गायन में परिवर्तन के अनुरूप वाद्यों के वादन में भी परिवर्तन हुए। कुछ वाद्य सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक रहे तथा कुछ वाद्य लुप्त हो गए, कुछ नवीन वाद्य प्रचार में आ गये। भारतीय संगीत में जहाँ स्मृद्ध परम्परा विद्यमान रही है किन्तु संगीत साधकों एवं आचार्यों ने साधना तो अवश्य की लेकिन क्रमबद्ध इतिहास लेखन नहीं किया। जिन चिंतकों

ने सिद्धांतों का निर्माण किया या सूत्रबद्ध किया उन आचार्यों की कृतियाँ संगीत-शास्त्रग्रन्थों के रूप में उपलब्ध होती हैं। जितने ग्रंथ आज. उपलब्ध हैं उतने ही ग्रन्थ रचे गए हों ऐसा नहीं । कई ग्रन्थ हस्तलेख संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, कई ग्रन्थ संभवत: कालकवलित हो गये हैं जिनकी सत्ता का उल्लेख प्राप्त ग्रन्थों के संदर्भों में मिलता है। अवनद्ध वाद्यों की नामकरण से लेकर उनकी परम्परा, निर्माण विधि, वादन विधि, वादन तकनीक तथा आधुनिक संगीत में उनकी वाद्य-वादन परम्परा का अध्ययन करने की जो योजना हमने बनायी है उसका उपजीव्य मूलत: शास्त्र-ग्रंथ है। संगीत शास्त्र-ग्रन्थों तथा साक्षात्कार और स्वयं के अनुभव के आधार पर अवनद्ध वाद्यों का समग्र रूप से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है । जो हमारी जिज्ञासाओं को शांत करेगा तथा संगीत जगत् से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति, छात्र तथा शोधकर्ता के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा ऐसा हमारा विश्वास है ।